उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य

मध्य हिमालय क्षेत्र के सर्वांगीण विकास का एकमात्र विकल्प

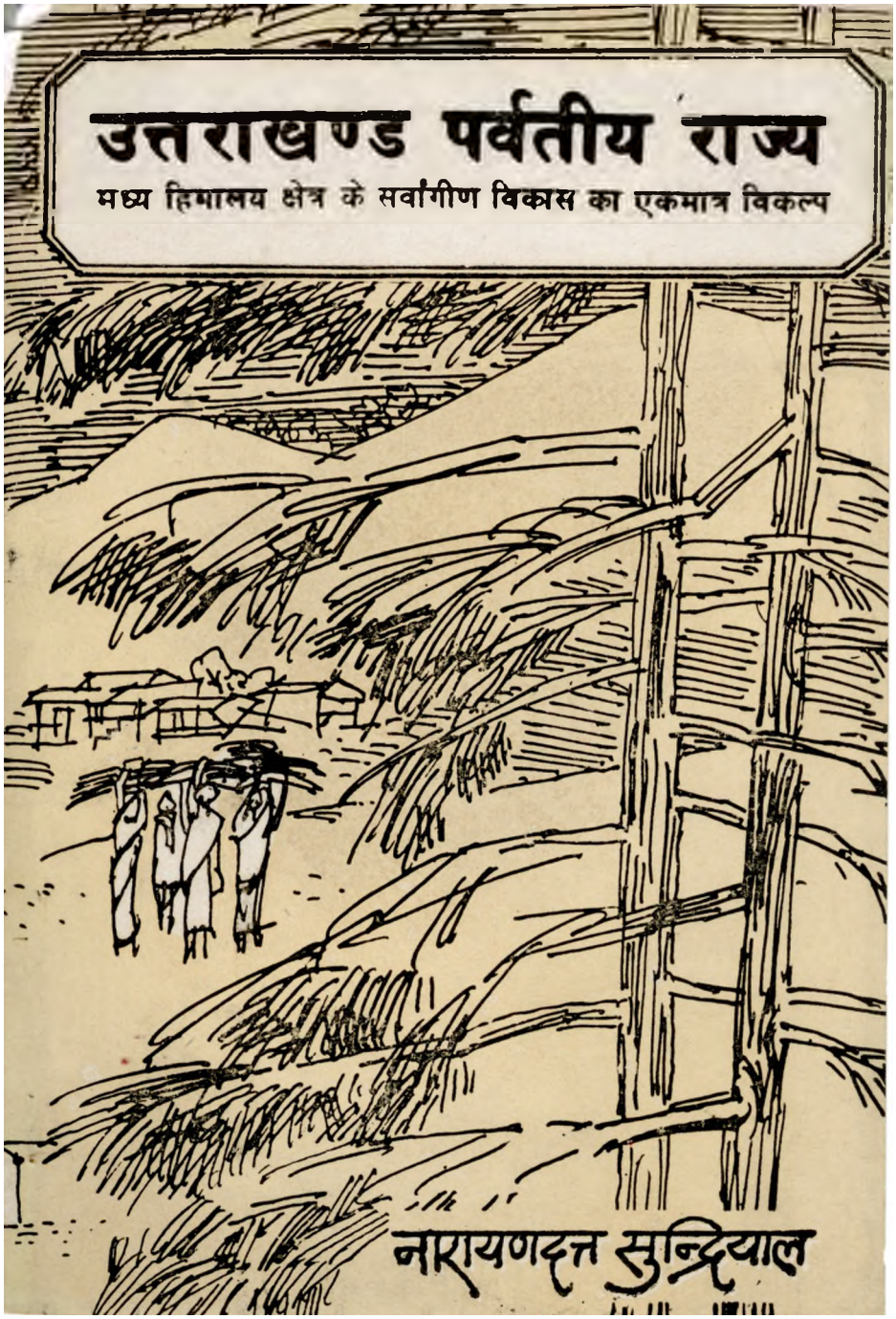

नारायणदत्त सुन्दियाल

स्वतंत्रता के बाद भी पिछड़ापन बरकरार

यद्यपि गढ़वाल-कुमाऊं क्षेत्र का स्वतंत्रता-आंदोलन और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र-निर्माण कार्यों में विशेष योगदान रहा है, फिर भी यह क्षेत्र देश के अन्य भागों की तुलना में पिछड़ा ही रह गया है । इसके विकास की ओर कभी से समुचित ध्यान नहीं दिया गया । ब्रिटिश सरकार के अपने साम्राज्यवादी हित रहे जिससे उसने इस समूचे इलाके को पिछड़ा रहने दिया । उसे यहां से बड़ी संख्या में सैनिक मिलते रहे । इस क्षेत्र के रजवाड़ों ने भी अपने सामंती हित-साधनों के लिए यहां के लोगों को गरीब, पिछड़ा और अंधविश्वासी बनाए रखने में ही अपना भला देखा । इस इलाके के कुछ हिस्से ब्रिटिश शासन के अधीन आ जाने के बाद भी यथास्थिति कायम रखी गई, ताकि यहां के लोगों में जन-जागृति न आ सके और उनका मनचाहा शोषण किया जा सके ।

देश के स्वतंत्र होने पर जनता द्वारा चुनी गई सरकार से यह उम्मीद की जा सकती थी कि वह छोटे-छोटे राजाओं द्वारा शोषित और ब्रिटिश सरकार द्वारा तिरस्कृत इस क्षेत्र के विकास की ओर ध्यान देगी, किन्तु ऐसा नहीं हुआ । आजादी की लड़ाई के दौरान यहां के लोगों में जो जोश-खरोश मौजूद था, आजादी के बाद उन्होंने उसे सामुदायिक विकास जैसे राष्ट्र-निर्माण कार्यों में लगाया, लेकिन अपनी चुनी हुई सरकार से उन्हें जरा भी प्रोत्साहन नहीं मिला । इस प्रदेश में कुछ सड़कों, पुलों और अनेक प्राथमिक स्कूलों को लोगों ने भयंकर गरीबी के बावजूद श्रमदान और चंदा करके ही बना दिया, लेकिन सरकार से इतना तक न हुआ कि ऐसे कामों के लिए इन लोगों की पीठ ही थपथपा देती । हुआ यह कि इन लोगों का धीरे-धीरे मोहभंग होने लगा और सरकार के भेदभावपूर्ण रवैये से उनका रहा-सहा उत्साह भी जाता रहा । वैसे यह स्थिति पूरे देश पर भी इसी तरह लागू होती है, लेकिन विकास की दृष्टि से तो इस क्षेत्र को देश के अन्य भागों की तुलना में बिल्कुल ही पीछे छोड़ दिया गया ।

वैसे समूचा उत्तर प्रदेश ही भारत के सबसे पिछड़े प्रदेशों में से एक है। स्वतंत्रता - संग्राम और स्वाधीन भारत में भी राजनीति के क्षेत्र में अग्रणी यह प्रदेश विकास के क्षेत्र में क्यों पीछे छूट गया, इसके लिए देश की पूरी व्यवस्था जिम्मेदार है । आजादी मिलते ही अधिकतर सत्ताधारियों के उद्देश्य

जोड़–तोड़, उठा–पटक, बड़बोले भाषणों में उलझे रह गये और सही मायनों में जनबल तथा क्षेत्रीय, प्रान्तीय या राष्ट्रीय समस्याओं की ओर ध्यान देने की फुर्सत हमारे बड़े–बड़े सत्ताधारियों को नहीं मिल पाई । अब तक इस प्रदेश के छः प्रधानमंत्री रह चुके हैं, लेकिन प्रदेश अभी तक करीब–करीब अपनी जगह पर है । यह तो रही देश के सबसे बड़े प्रदेश की बात जो क्षेत्र या आबादी को देखते हुए एक साथ 5–6 योरोपीय राष्ट्रों से भी बड़ा है । कुमाऊं, गढ़वाल मंडल की बात करें तो पूरे प्रदेश की तुलना में ये दोनों मंडल कहीं नहीं आते । इनके आठ में से छः जिले उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक पिछड़े जिले हैं । इनमें भी टिहरी जिला तो अभी तक वर्षों की सामंती मार से ही नहीं उभर पाया है । यह बड़ी विडम्बना है कि कुमाऊं–गढ़वाल से अब तक उत्तर प्रदेश में चार मुख्यमंत्री व कई मंत्री रह चुके हैं, फिर भी यहां की स्थिति में सुधार नहीं हो पाया । पिछले कुछ वर्षों से तो कम से कम पांच बार पर्वतीय विकास मंत्री भी इसी इलाके के रहे हैं, फिर भी विकास के नाम पर यहां कुछ क्यों नहीं हुआ ? इसका एक कारण यहां की सरकार के कर्णधारों का आपसी मतभेद भी रहा है । इनका सारा ध्यान सत्ता और शक्ति को हथियाने में लगा रहा । अगर अपने समुचित विकास के लिए आज हम लोग राजनैतिक मांग करते हैं तो यह मांग जायज इसलिए है कि हम वर्षों से सड़ी–गली राजनीतिक व्यवस्था से अब बहुत कुछ अपेक्षा नहीं रखते । राष्ट्र के भीतर हमारे क्षेत्र की राजनैतिक व्यवस्था अलग से होनी चाहिए जो प्राकृतिक, आर्थिक और मानव–संसाधनों के सही तालमेल और योजनाबद्ध उपयोग से अपनी विकास की रूपरेखा तैयार करके खुद ही उस पर अमल कर सके ।

सारे देश में आज भी 46% लोग गरीबी – रेखा से नीचे हैं, लेकिन कुमाऊं–गढ़वाल के तो 70% लोग गरीबी – रेखा को पार नहीं कर पाये हैं। अगर भीषण गरीबी की भी कोई रेखा तैयार की जाये तो इस क्षेत्र के ये सभी लोग उस रेखा से भी नीचे ही होंगे । यहां के 75% से अधिक लोगों की रोजी–रोटी खेती पर निर्भर करती है, लेकिन एक आदमी के हिस्से 0.65 हेक्टेयर जमीन आ पाती है । पूरे क्षेत्र में केवल 13.1% जमीन खेती योग्य है लेकिन सिंचाई सुविधाएं केवल 3% जमीन में उपलब्ध हैं । ऐसी स्थिति में जितनी सिंचाई–बेसिंचाई की जमीन खेती के लिये उपलब्ध है, उससे यहां के लोगों का मुश्किल से तीन महीने तक गुजारा हो पाता है ।

अन्य रोजगार के साधनों के अभाव में यहां के सैकड़ों हजारों नौजवानों को जीवन-निर्वाह के लिए देश के अन्य भागों का मुंह ताकना पड़ता है। छोटी-छोटी नौकरियों के लिए भी उन्हें अपने घर छोड़ने पर मजबूर होना पड़ता है। इतने लोगों के घर छोडकर बाहर चले जाने से यहां के गांवों की रही-सही काम-चलाऊ व्यवस्था भी चरमरा गई है।

श्री आर. एस. बोरा द्वारा कुमाऊं-गढ़वाल के अनेक गांवों के सर्वेक्षण के मुताबिक यह देखा गया है कि वहां के काम करने योग्य पुरुषों में से 46% का बेरोजगारी के कारण पलायन हो गया है और 59% परिवारों से कम से कम एक व्यक्ति रोजगार के लिये अन्यत्र चला गया है। इस प्रकार काफी हद तक यहां के लोग अपने परिवारों से प्रवास में रहने वालों के भेजे हुए मनीआर्डरों पर निर्भर करते हैं। यह देखा गया है कि मनीआर्डरों के कारण यहां की प्रति व्यक्ति औसत आमदनी में 62% का इजाफा होता है। इस प्रकार यहां के लोग काफी हद तक 'मनीआर्डर इकोनोमी' पर निर्भर हैं।

हमारे पहाड़ी क्षेत्र की सबसे बड़ी सम्पदा जंगल हैं। वन-सम्पदा रियायती दरों पर अथवा नाममात्र के दामों पर बाहर के उद्योगपतियों को और अधिक धनी बनाने का साधन बन रही है। हमारे यहां के जंगल औद्योगीकरण के साधन नहीं बनाये जा रहे हैं। उल्टे उन्हें मुट्ठीभर बाहरी पूंजीपतियों के हाथ लुटाया जा रहा है। इस क्षेत्र में उद्योग लगाने के सिलसिले में अनेक तरह की टेक्नोलॉजी का जिक्र किया जा रहा है, लेकिन वनाधारित उद्योगों की ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया है। हमारे पहाड़ों के अन्दर खनिज पदार्थों का अपार भंडार है। उनकी खोज की ओर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बागेश्वर के नजदीक बहुमूल्य मैगनासाइट की खोज देश के बड़े इजारेदार टाटा को समर्पित कर सरकार द्वारा टाटा कम्पनी को हमारे क्षेत्र में घुसपैठ की इजाजत दे दी गई है। जबकि कुमाऊं-गढ़वाल के गरीब भूमिहीन लोगों के पास अपनी पैत्रिक भूमि में ही खेती करने के लिये खेत नहीं मिल पाते, सारी तराई की अधिकतर भूमि बड़े प्रशासनिक और फौजी अफसरों, अपने काले धन को 'हवाइट' करने वाले व्यवसाइयों व ठेकेदारों को दे दी गई है। उन लोगों ने यहां बड़े-बड़े फार्म बना लिये हैं। इनके साथ जबर्दस्ती कब्जा करने वालों ने भी काफी जमीन को हथिया लिया है। इससे जमीन के सही हकदार अपने अधिकार

से वंचित रह गये ह ।

चूंकि अभी तक कोई सोद्देश्य, सशक्त जन-आंदोलन नहीं चला, इसलिये भी इस क्षेत्र की मोलीमाली जनता की आखों में धूल झोंका जाता रहा । लोगों को बहकाने, चुप करने या भुलावे में रखने के लिये, पर्वतीय वित्त निगम, पर्वतीय विकास मंडल, पर्वतीय विकास मंत्रालय जैसे प्रलोभन दिये जाते रहे । वैसे तथ्य यह है कि उत्तर प्रदेश के विकास के लिए जो भी योजनाएं बनीं, वे सभी मैदानी क्षेत्रों की जरूरतों को जहन में रखकर बनाई गईं, क्योंकि नियोजकों को इस क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक जीवन की समस्याओं के बारे में कोई व्यावहारिक जानकारी नहीं थी। इसीलिए अव्यावहारिक और दोषपूर्ण योजनाओं से इस क्षेत्र का वांछित विकास नहीं हो पाया । यदि नियोजकों को इस क्षेत्र का थोड़ा भी ज्ञान होता तो वे अपने कथित सर्वेक्षण के आधार पर इस क्षेत्र के लिए कुंआ, सिंहाड़ा की खेती, ट्रैक्टर और लोहे के हलों का सुझाव नहीं देते ।

नियोजकों के इन सुझावों को देखकर कोई भी इस परिणाम पर पहुंचने में गलती नहीं करेगा कि उन्होंने उस क्षेत्र में जाकर यहां के निवासियों की समस्याओं एवं उनके जीवन को देखने का कितना और किस तरह कष्ट उठाया ।

इसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण तो प्रशासन से सम्बन्धित नौकरशाही का पर्वतीय क्षेत्र के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण रहा है । प्रायः सभी संबंधित अधिकारी मैदानी क्षेत्रों के होने के कारण पर्वतीय क्षेत्रों से अपरिचित रहे हैं । इन लोगों का इस क्षेत्र की जनता के रहन-सहन, यहां की सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक स्थितियों से कोई सरोकार नहीं रहा । उन्होंने यहां के जीवन को उन्नत करने में कोई रुचि नहीं दिखाई । मैदानी क्षेत्रों की भांति सहूलियतें न होने के कारण उन्होंने यहां के जन-जीवन को जाकर देखने का कष्ट नहीं किया । उल्टे इस क्षेत्र से मैदानी इलाकों में तबादले की ही सोचते रहे ।

• पर्वतीय क्षेत्रों की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में न रखते हुए नियोजकों ने विकास के लिये समान वित्तीय साधन मंजूर किये, लेकिन इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि पर्वतीय क्षेत्रों की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण संचार, यातायात, पुल, सिंचाई आदि योजनाओं पर यहां मैदानी क्षेत्र की तुलना में उतने ही विकास के लिये कई गुना अधिक खर्च होता है ।

स्वायत्तता की मांग और उसके स्वरूप

इस प्रकार वर्षों से तिरस्कृत, इस क्षेत्र की जनता का मन काफी लम्बे समय से दुखी हो रहा था, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से उसने निर्धनता, बेकारी, अशिक्षा एवं अज्ञानता के गर्त से निकलकर अपने को दूसरे विकासशील प्रांतों एवं क्षेत्रों की भांति विकसित करने की दिशा में सोचना और उसके लिये संघर्ष प्रारम्भ किया है । लोगों ने यह भली-भांति देख लिया है कि जब तक वे स्वयं इस क्षेत्र की योजना बनाने और उसे कार्यरूप में परिणत करने में भाग नहीं लेते हैं, तब तक न यहां पर कृषि का विकास होगा, न आने-जाने के लिये सड़कों एवं पुलों का निर्माण होगा और न ही यहां का सामाजिक-आर्थिक विकास ही हो पायेगा । जब तक वे इस क्षेत्र के विकास-कार्य को अपने हाथ में नहीं लेते, जब तक यहां की जनता स्वयं अपनी भाग्य-विधाता नहीं बन जाती, तब तक यहां खुशहाली एवं विकास का स्वप्न साकार नहीं हो पायेगा । यह केवल तभी संभव हो सकता है जब कि इस क्षेत्र को स्वायत्तता सौंप दी जाय । इसीलिये आज इस क्षेत्र में स्वायत्तता की मांग जोर पकड़ने लगी है । इस मांग को और अधिक बल इस तथ्य से भी मिला है कि समूचे हिमालय क्षेत्र में केवल यही एक ऐसा क्षेत्र छूट गया है, जिसे स्वायत्तता से वंचित रखा गया है । हिमाचल प्रदेश का विकास इस बात का प्रमाण है कि जब तक शासन की शक्ति स्वयं क्षेत्रीय जनता के हाथ में न आ जाए, तब तक उसका विकास नहीं होता । अतः इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि इस क्षेत्र को स्वायत्तता मिलनी ही चाहिये ।

स्वायत्तता के क्या स्वरूप हैं इस बारे में मुख्यतः तीन प्रकार के विचार हमारे सामने हैं :

1. केन्द्र शासित प्रदेश
2. मेघालय की प्रारम्भिक स्थिति के समान उत्तर प्रदेश सरकार के अन्तर्गत स्वायत्तता
3. पूर्ण राज्य का दर्जा ।

यहां पर यह जरूरी है कि एक-एक करके इन सभी बातों पर विचार कर लिया जाये । जहां तक केन्द्र शासित प्रदेश का प्रश्न है, उसमें नौकरशाही

का ही बोलबाला होगा । नौकरशाही से कौन परिचित नहीं है ? उसका आमतौर पर जनता से सीधा सम्पर्क नहीं होता । जनता की कठिनाइयों, आवश्यकताओं एवं उनके विकास में उसकी कोई रुचि नहीं होती ।

केन्द्र शासित प्रदेश में बहुत जरूरी फैसले भी नौकरशाही के संजाल (नेटवर्क) में उलझ कर रह जाते हैं । फाइलों को केन्द्र के अनेक मंत्रालयों के चक्कर काटने होते हैं और कई मामलों में तो दो-तीन मंत्रालयों की मंजूरी भी लेनी होती है । पहले तो सुदूर प्रदेश का कोई मामला किसी भी मंत्रालय के लिए बहुत जरूरी नहीं होता, लेकिन अगर एक ही फाइल तीन-चार मंत्रालयों में भेजी जानी हो, तो आवश्यक समन्वय के अभाव में वह बीच में ही भटकी रह जाती है । कई बार इन फाइलों को आवश्यक टिप्पणियों के लिए बीच में ही वापस भी भेज दिया जाता है । महीनों गुजर जाने पर अगर फैसला हो भी गया तो कई बार फैसला होने तक कुछ योजनाओं, कार्यक्रमों या मुद्दों का महत्व ही समाप्त हो जाता है । कुछ फैसले केन्द्र के मंत्रालयों में हो भी जाते हैं, लेकिन उनकी सूचना केन्द्र शासित प्रदेश तक पहुंचते-पहुंचते महीनों लग जाते हैं । कुछ देर उनके लागू होने में लगती है । इस तरह अनेक लोग, जिन्हें ऐसे फैसलों से लाभान्वित होना था, वंचित रह जाते हैं । निर्माण-परियोजनाओं में तो अनेक तरह की जटिलताएँ सामने आती हैं । जब तक फैसला हो पाता है तब तक नया बजट - वर्ष शुरू हो जाता है, लेकिन परियोजना के लिए निर्धारित व्यय में वृद्धि नहीं की जाती । फाइलों पर लिखी टिप्पणियां मंत्रालय के सचिवों की समझ में पहले तो आती ही नहीं और अगर सहायकों की सहायता से कुछ-कुछ बात समझ में आ भी जाये तो वे उस पर दिल्ली के नजरिये से दृष्टिपात करते हैं । अगर केन्द्र शासित प्रदेश पहाड़ी प्रदेश हो, तो फिर आम तौर पर सही फैसले की उम्मीद करना ही बेकार है ।

जिस केन्द्र शासित प्रदेश में अपनी विधानसभा नहीं है, वहां नौकरशाही निरंकुश हो जाती है । जहां विधानसभा होती भी है, वहां उसे सीमित अधिकार ही प्राप्त होते हैं । दोनों ही स्थितियों में केन्द्र पर ही निर्भर रहना पड़ता है। बड़ी मुश्किल से तो केन्द्र में इक्के-दुक्के फैसले हो पाते हैं । उससे भी बड़ी मुश्किल से किसी योजना के लिए पैसा मिल पाता है, लेकिन स्थानीय नौकरशाही भी तो केन्द्र की नौकरशाही का ही प्रतिरूप है । एक उदाहरण लें । तीसरी पंचवर्षीय योजना में उत्तराखण्ड (तब सीमावर्ती क्षेत्र के

तेजी से विकास के लिये उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ को मिलाकर बना था) के लिये 28 करोड़ रुपये स्वीकृत हुए थे । नौकरशाही के कमाल से इसमें से केवल 21 करोड़ रुपये ही खर्च हो पाये । सात करोड़ रुपये खर्च नहीं हो पाये । इसमें से 3 करोड़ रुपयों का सड़क-निर्माण में उपयोग नहीं हो सका। सीमाक्षेत्र के विकास के लिए सड़क बनाने के काम को प्राथमिकता दी जानी चाहिये थी । इससे जाहिर है कि नौकरशाही द्वारा इस क्षेत्र का विकास नहीं हो सकता । इसके अन्तर्गत केन्द्र में 'अन्डर सेक्रेटरी' और जिले में 'डिपुटी कमिश्नर' का निरंकुश राज होगा ।

2. उत्तर प्रदेश सरकार के अन्तर्गत स्वायत्तता का अर्थ है राज्य के अन्तर्गत उपराज्य । इसका अर्थ होगा ऐसा राज्य जो राजनैतिक दृष्टि से दूसरे दर्जे का हो ।

ऐसी स्वायत्त विधान सभा की शक्तियां सीमित होती हैं । ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य का राज्यपाल, जो कि स्वायत्त राज्य का भी राज्यपाल है, सर्वशक्तिशाली है । कार्यपालिका सम्बन्धी सारी शक्तियां उसी के निहित हैं । उसकी इच्छा के बिना महत्वपूर्ण विधेयक एवं धन-विधेयक पेश व पास नहीं हो सकते । राज्यपाल भी केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा नियुक्त किया जाता है । इसलिये स्वायत्तता प्राप्त राज्य उसके ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रख सकेगा । ऐसे शासन में मंत्रि-परिषद् केवल नाममात्र के लिये ही होगी । शक्तिविहीन मंत्रि-परिषद जनता की कठिनाइयों का निवारण नहीं कर पायेगी । इसके महत्वपूर्ण विषय, जैसे सड़कों का निर्माण, सिंचाई संबंधी सुविधाएं, बाढ़ आदि पर नियंत्रण, बांध, बिजली, जल-शक्ति, बड़े उद्योग-धंधे, कानून व न्याय-व्यवस्था सभी राज्य सरकार के अन्तर्गत आयेंगे और स्वायत्तता प्राप्त प्रदेश को इनके लिये राज्य पर ही निर्भर रहना पड़ेगा ।

अतः एक ओर जहां हम यह कहते हैं कि शासक और नियोजक हमारी आवश्यकताओं के अनुसार ठीक योजनाएं नहीं बनाते और फिर भी हम उत्तर प्रदेश सरकार के अन्तर्गत स्वायत्तता की बात करें, तो इसका साफ मतलब होगा कि हम यथास्थिति के ही पोषक हैं । क्योंकि सभी महत्वपूर्ण विकास संबंधी विषय राज्य सरकार के हाथ में होने और उसी राज्य सरकार के नियंत्रण के स्वायत्त शासन होने के कारण विकास का हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पायेगा । हम तो एक नये रूप में उसी शासन-व्यवस्था के मुहताज हो जायेंगे, जिसके कारण विकास की हमारी गति अब तक अवरुद्ध रही है।

अलग स्वायत्तता की मांग के पूरा हो जाने पर भी हम अपने अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल ही रहेंगे ।

इस संबंध में उपर्युक्त दोनों प्रकार के शासन के स्वरूप को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि पर्वतीय जनता की चहुंमुखी प्रगति तथा जनतांत्रिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये गढ़वाल-कुमाऊं (उत्तराखण्ड) के क्षेत्र, जिसमें गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, अलमोड़ा, नैनीताल, देहरादून, उत्तरकाशी, चमोली, पिथौरागढ़ और हरिद्वार के नौ जिले शामिल हैं, को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाय, ताकि जनता की अपनी सरकार हो और उस पर जनता का नियंत्रण हो । जब जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि विकास की महत्वपूर्ण योजना तैयार करेंगे और उन्हें क्रियान्वित करने के लिये प्रशासनिक व्यवस्था भी उन्हीं के हाथों में होगी, तभी क्षेत्र का समुचित व चहुंमुखी विकास तथा जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति हो सकेगी ।

हिमाचल प्रदेश केन्द्र शासित तथा मेघालय असम के अन्तर्गत स्वायत्त शासित होने के कारण चहुंमुखी विकास में अग्रसर नहीं हो पा रहे थे, अतः वहां भी पूर्ण राज्य के दर्जे की मांग के लिये जन-आंदोलन ने जोर पकड़ा और उन्हें पूर्ण राज्य का दर्जा मिल गया । आज पूरे हिमालय क्षेत्र में जम्मू-कश्मीर से लेकर नगालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा तक सभी प्रदेशों को पूर्ण राज्य का दर्जा मिल गया है । इस क्षेत्र में केवल उत्तराखण्ड का ही क्षेत्र रह गया है, जिसको अभी तक कोई स्वायत्तता नहीं मिली । इस क्षेत्र के उत्तर में तिब्बत (चीन), पूर्व में नेपाल और पश्चिम में हिमाचल प्रदेश स्थित है । इसकी जनसंख्या सन् 1981 की जनगणना के मुताबिक 48,35,912 है । अन्य पर्वतीय प्रदेशों की जनसंख्या के आंकड़े इस प्रकार हैं :

पर्वतीय प्रदेशों की जनसंख्या – सन् 1981

1. जम्मू-कश्मीर	59,87,399
2. हिमाचल प्रदेश	42,80,818
3. त्रिपुरा	20,53,058
4. मणिपुर	14,20,953
5. मेघालय	13,35,819
6. नगालैंड	7,75,930
7. अरुणाचल प्रदेश	6,31,839

8. मिजोरम	4,93,757
9. सिक्किम	3,16,385

पूर्ण राज्य के दावे के आधार

उपरोक्त चार्ट से जाहिर है कि जम्मू–कश्मीर को छोड़कर (जिसका संविधान की धारा 370 के मुताबिक विशेष दर्जा है) सारे हिमालयी पर्वतीय क्षेत्र में उत्तराखण्ड जनसंख्या में सबसे बड़ा क्षेत्र है । उत्तराखण्ड से, जिसका क्षेत्रफल 51,122 वर्ग कि० मी० है, अभी केवल 19 विधानसभा सदस्य चुने जाते हैं । विधानसभा क्षेत्र इतने बड़े हैं कि सदस्य को अपने क्षेत्र का दौरा करने में काफी दिक्कत होती है । संविधान की धारा 170 के मुताबिक किसी भी प्रदेश में विधानसभा के सदस्यों की संख्या 60 से कम नहीं हो सकती । उत्तराखण्ड को यदि राज्य का दर्जा मिल जाता है, तो इसमें विधानसभा के सदस्यों की संख्या 60 से अधिक होगी । किन्तु हिमाचल प्रदेश में, जो उत्तराखण्ड से छोटा है, विधानसभा सदस्यों की संख्या 68 है और जम्मू–कश्मीर जो उत्तराखण्ड से बड़ा है वहां विधान सभा सदस्यों की संख्या 76 है । अतः उत्तराखण्ड को राज्य का दर्जा मिलने पर विधानसभा के सदस्यों की संख्या 68 और 76 के बीच होगी । इस प्रकार छोटे विधानसभा क्षेत्र होने से सदस्यों को जनता से सम्पर्क रखने में काफी सुविधा हो जायेगी ।

पहले हिमाचल प्रदेश की आर्थिक स्थिति गढ़वाल–कुमाऊं क्षेत्र की तरह ही खराब थी, लेकिन पूर्ण राज्य होने के बाद वह प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है । यह बात निम्नांकित तालिका से जाहिर है :

इकनॉमिक टाइम्स, 19 दिसम्बर 1986 (के० एन० जी० नायर)

गरीबी–रेखा से नीचे जनसंख्या

	1977 – 78
भारत	48.1 %
जम्मू–कश्मीर	34.1 %
हिमाचल प्रदेश	27.1 %
उत्तर प्रदेश	50.1 %

इस लिहाज से उत्तराखण्ड की स्थिति अत्यंत शोचनीय है । वहां के 70 %. लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं । देश को आजादी मिलने के आठ महीने बाद 15 अप्रैल 1948 को 30 पहाड़ी रियासतों को एकीकृत करके हिमाचल प्रदेश की स्थापना की गई । तब इसका क्षेत्रफल 27,618 वर्ग किलोमीटर था और आबादी नौ लाख 35 हजार । सन् 1966 में पंजाब के पुनर्गठन के बाद उसके पहाड़ी इलाके हिमाचल प्रदेश में मिला देने से हिमाचल प्रदेश का क्षेत्रफल बढ़कर 55,673 वर्ग किलोमीटर हो गया और 1981 की जनगणना के अनुसार आबादी 42 लाख 80 हजार आठ सौ 18 तक पहुंच गई ।

25 जनवरी 1971 को हिमाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला और वह भारतीय संघ का अठारहवां राज्य बना । 1981 की जनगणना के आधार पर राज्य में 42.48 प्रतिशत साक्षरता थी । वहां 3 विश्वविद्यालय, 20 सरकारी कालेज, 10 प्राइवेट कालेज, पांच सान्ध्यकालीन कालेज और 9,649 स्कूल थे । इस समय हिमाचल विश्वविद्यालय में एम.ए. कक्षाओं तक पत्राचार पाठ्यक्रम की भी सुविधा है । साथ ही एडवांस स्टडीज तथा अनुसंधान संबंधी केन्द्रीय या राज्यस्तर के अनेक संस्थान भी वहां मौजूद हैं । राज्य में 16,000 किलोमीटर लंबी सड़कें हैं और कुल 18,721 गांवों में से हर तरह की सुविधाओं से सम्पन्न या हर तरह आबाद 16,916 गांव हैं । राज्य के 94%. गांवों में बिजली पहुंच चुकी है और 81.62 प्रतिशत गांवों में पीने के शुद्ध पानी की सुविधा है । राज्य में प्रतिवर्ष 13 लाख 20 हजार टन अनाज होता है और 4 लाख टन फलों की पैदावार होती है ।

यों तो राज्य को पहली पंचवर्षीय योजना से ही योजना के लाभ मिलने शुरू हो गये थे, लेकिन राज्य की चहुंमुखी प्रगति तभी शुरू हुई, जब 1971 में उसे पूर्ण राज्य का दर्जा मिला । हिमाचल प्रदेश में कुछ दिन पहले तक प्रति व्यक्ति आमदनी 2,396 रुपये थी, जबकि 15 वर्ष पहले वह केवल 678 रुपये थी । जाहिर है यह प्रगति प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा मिलने से ही हुई ।

हरिद्वार क्षेत्र के मिल जाने पर उत्तराखण्ड क्षेत्र आबादी और क्षेत्रफल दोनों ही दृष्टि से हिमाचल प्रदेश से एक बड़ा क्षेत्र है, लेकिन अलग राज्य न हो सकने के कारण वह अभी तक पिछड़ेपन का शिकार रहा है ।

भाषावार प्रान्तों के सिद्धान्त का विचार सन् 1928 में सबसे पहले सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा चुनी हुई नेहरू समिति ने दिया । इन्हीं सिद्धान्तों की बुनियाद पर सरकार द्वारा सन् 1953 में राज्यों के पुनर्गठन हेतु आयोग बनाया गया और उसी आयोग की सिफारिशों की बुनियाद पर भाषावार राज्यों का पुनर्गठन हुआ । इसके लिये जन-आंदोलनों की भी अपनी भूमिका है ।

भाषावार राज्य बनाने का उद्देश्य यह था कि आम लोग राज्य के प्रशासन को चलाने में भाग ले सकें, जिससे कि शासन-प्रणाली जनतांत्रिक हो सके, राज्य की भाषा में उसकी शिक्षा की व्यवस्था हो सके और भाषा तथा उस पर आधारित साहित्य को विकसित करने और अपनी संस्कृति के विकास में मदद मिल सके ।

उत्तराखण्ड एक विशिष्ट इकाई

कुमाऊं-गढ़वाल की संस्कृति, रीति-रिवाज, जैसे लोकगीत, लोकनृत्य, वाद्य, शादी-ब्याह आदि, एक जैसे हैं । यहां की अर्थव्यवस्था भी समान है । यहां की भौगोलिक स्थिति एक जैसी है । बहुत बड़ा भाग पर्वतीय है और उसका अभिन्न अंग और स्वाभाविक विकास तराई-भावर का क्षेत्र है ।

उत्तराखण्ड (गढ़वाल-कुमाऊं) क्षेत्र की भाषा सामान्यतः गढ़वाली, कुमाऊंनी और सम्मिलित रूप से मध्य पहाड़ी कहलाई जाती है । जौनसारी भी मध्य पहाड़ी के निकट है । गढ़वाली-कुमाऊंनी भाषा में बहुत-सा साहित्य प्रकाशित है । गढ़वाली-कुमाऊंनी में अब फिल्में भी बनने लगी हैं । गढ़वाली-कुमाऊंनी लोकगीत, लोक-नृत्य, नाटक, नृत्यनाटिका तथा संगीत-नाटिका लोकप्रिय होती जा रही हैं । अतः उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य के गठन हेतु यहां की संस्कृति, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक व्यवस्था, रीति-रिवाज तथा भाषा का एक मजबूत आधार है । पर्वतीय राज्य की प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र की प्रगति और चहुंमुखी विकास के लिये कार्यक्रम की दिशा और रूपरेखा का होना आवश्यक है, क्योंकि केवल राज्य मिलने मात्र से ही विकास नहीं हो जायेगा । भारत की आजादी के बाद क्या होगा, कैसे खुशहाली आयेगी, इस तरह की सोच के साथ समाजवादी व्यवस्था का कोई 'प्रोग्राम' नहीं था । इसीलिये आज भी देश पूंजीवादी व्यवस्था का शिकार है, जिससे केवल चंद लोग आजादी के फल का उपयोग करते हैं और देश की

बेकारी, बेरोजगारी, भुखमरी की समस्या हल नहीं हो पाई और इसके लिये जनता को अभी भी संघर्षरत रहना पड़ रहा है ।

कार्य–दिशा

कुमाऊंनी अथवा गढ़वाली उनको समझा जायेगा, जो इस अंचल में बस गये हैं और इसको अपना घर मानकर रहना चाहते हैं । अपनी मेहनत की कमाई खाते हैं । इन अल्पसंख्यक भाइयों को, सब जाति, धर्म व नाना भाषा वालों को, चाहे वे मुसलमान हों या ईसाई या सिख, चाहे वे हिन्दी, उर्दू, पंजाबी या बंगाली भाषा–भाषी हों, आश्वासन दिया जाता है कि उनके प्रति भाईचारे की ही भावना रखी जायेगी । उनके जनवादी अधिकारों की रक्षा की जायेगी और पूर्ण आशा है कि वे भी कुमाऊं–गढ़वाल की विकट समस्याओं को हल करने में कंधे से कंधा मिलायेंगे ।

हमारे समाज की विशेषता यह है कि उसके अन्दर आधुनिक पूंजीपति वर्ग नहीं है । व्यापारी और ठेकेदार हैं, जो मध्यमवर्ग की भिन्न श्रेणियों में आते हैं । इस विशेषता पर आधारित स्थानीय विकास बहुमुखी प्रगतिशील दिशा में किया जा सकता है ।

औद्योगीकरण

भारी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में और छोटे उद्योग सहकारी क्षेत्र में अथवा स्थानीय पूंजी की बुनियाद पर खोले जायेंगे । स्थानीय व्यापारी, ठेकेदार व अन्य छोटी पूंजी वाले लोगों को लघु उद्योगों के लिये पूरी सहूलियतें दी जायेंगी । यहाँ के मूल लोगों को इन उद्योगों में रोजगार में प्राथमिकता दी जायेगी, जो कि अभी नहीं हो रहा है ।

उत्तराखण्ड के जो क्षेत्र कम विकसित हैं, उन्हें विकास के लिये प्राथमिकता दी जायेगी ।

पहाड़ के दो तिहाई क्षेत्र में वन हैं । ये वन आमदनी के अलावा पर्यावरण की रोकथाम और स्वच्छ वायु के लिये आवश्यक हैं । लेकिन अवैध कटान के कारण वे अब क्षीण होते जा रहे हैं । इसके लिये आवश्यक है

कि ऐसी नीति बनाई जाये कि गलत कटान को रोका जा सके । पक्के सही पेड़ों को ही काटा जा सकता है और लगातार नये पेड़ लगाने की नीति रहे, जिससे कि जंगल भरे रहें । जंगल की आमदनी का राज्य के राजस्व में काफी बड़ा हिस्सा हो सकता है । ग्रामीण लोगों को लकड़ी–घास तथा इमारती लकड़ी के लिये हक–हकूक होंगे, लेकिन हकूक की लकड़ी स्वयं की ही आवश्यकता के लिये इस्तेमाल होगी और आमदनी के लिये हकूक के पेड़ किसी ठेकेदार को नहीं बेचे जा सकेंगे, ताकि जंगल का अंधाधुंध कटान और नुकसान रोका जा सके । इस क्षेत्र में सामाजिक वानिकी (सोशल फॉरेस्ट्री) को भी प्रोत्साहन दिया जायेगा ।

जंगलात पर निर्भर उद्योग इस क्षेत्र के ही अन्दर विशेषकर तराई व देहरादून, ऋषिकेश, कोटद्वार, रामनगर, हल्द्वानी आदि स्थानों व उनके निकट खोले जायेंगे । इससे लोगों को रोजगार भी मिलेगा, उद्योगों से आमदनी बढ़ेगी और इन व्यापारी शहरों का व्यापार बढ़ेगा तथा विकास होगा । जंगलात का एक भी माल रियायती दामों पर बाहर के पूंजीपतियों के हाथ नहीं बेचा जायेगा ।

फल–पट्टी क्षेत्र का विकास किया जायेगा और एक भी फलोद्यान को बाहरवालों के हाथ में नहीं जाने दिया जायेगा । वन अधिनियम में आवश्यक संशोधन के लिए केन्द्र पर जोर दिया जायेगा, ताकि फल–पट्टियों तक सड़कों के निर्माण में बाधा उत्पन्न न हो । सहकारी आधार पर फलों के विपणन के लिए मंडियों और परिवहन की उचित व्यवस्था की जाएगी । दूनघाटी, भावर और तराई की जरखेज जमीन में इतना अनाज पैदा होता है कि वह इस राज्य का अन्न–भंडार होगा और राज्य की अनाज की आवश्यकता पूरी करने के बाद बाहर अन्य राज्यों को अनाज बेचा जा सकता है । इस तराई में भूमि – सीमा संबंधी कानून सख्ती से लागू कर गरीबों, भूमिहीनों, खेत–मजदूरों व फौजी भाइयों को सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत बसाया जायेगा । इससे पहाड़ के तमाम भूमिहीनों की समस्या का भी समाधान हो सकेगा । पहाड़ों के अन्दर बहुत से खनिज पदार्थ हैं, जैसे लोहा, ताम्बा, माइका, मैग्नासाइट, इत्यादि । इन खनिज पदार्थों की खोज की जायेगी और उनका उपयोग किया जायेगा ।

पहाड़ों में जड़ी–बूटियों को इकट्ठा करके उनके अन्वेषण और निर्यात की उपयुक्त व्यवस्था की जाएगी ।

उचित सुविधाएं प्रदान करके पर्यटन-उद्योग को बढ़ाया जा सकता है। उत्तराखण्ड के अन्तर्गत हिमालय श्रृंखला में बर्फ से ढकी करीब 20 मनोरम पहाड़ी चोटियां हैं। अतः पर्वतारोहण की भी अच्छी सम्भावनाएं हैं। हर की दून और केदार पुंछ 'समर स्कीइंग' के सर्वोत्कृष्ट स्थल हैं। अभी तक केवल औली में ही स्कीइंग की व्यवस्था की गई है। औली के बाद इस तरफ भी ध्यान देना जरूरी है। यहां की फूलों की घाटियों, बुग्यालों की ओर भी अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

उत्तराखण्ड कई बड़ी-छोटी नदियों का स्रोत है, जिससे कि बहुत-सी नदी-घाटी योजनाएँ तैयार हो सकती हैं। अनेक छोटी पन-बिजली योजनाओं, बड़े-बड़े बांधों, जैसे रामगंगा-कालागढ़ डैम, टेहरी डैम आदि और बहुत-सी अन्य पन-बिजली परियोजनाओं से पैदा होने वाली बिजली से पहाड़ों को केवल बिजली ही उपलब्ध नहीं होगी, बल्कि इससे करोड़ों की आमदनी भी होगी। पन-बिजली उत्पादन में इस क्षेत्र की जितनी क्षमता है, यदि उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाय तो अकेले इससे ही पूरे क्षेत्र ही चहुंमुखी प्रगति के दरवाजे खुल जायेंगे।

पर्यावरण

विकास और पर्यावरण साथ-साथ चलेंगे और एक दूसरे के पूरक होंगे। विकास के लिये जितना सड़क व भवन-निर्माण आदि आवश्यक होगा, किया जायेगा। लेकिन साथ ही सही वृक्षारोपण नीति से पर्यावरण की रोकथाम की जायेगी। अनावश्यक निर्माण व भूमिकटान पर रोक रहेगी।

इस प्रकार जनहित के विकास की गति को आगे बढ़ाया जायेगा। इससे रोजगार की समस्या का हल होगा, आमदनी के जरिये बढ़ेंगे और उत्तराखण्ड राज्य स्वावलम्बी होगा। फिर भी यदि आवश्यकता पड़े, तो भारत सरकार से अनुदान लिया जा सकता है, क्योंकि यह कोई खैरात नहीं होगी। यह तो यहां का हक होगा। भारत सरकार की भी जिम्मेदारी है कि देश के जो भाग पिछड़े हैं, अविकसित हैं उनके विकास में प्राथमिकता दी जाए।

संविधान की धारा 275 के अन्तर्गत विशेष दर्जे वाले कुछ राज्यों को स्वावलम्बी बनाने के लिए, केन्द्र से मदद दी जाती है। पूर्वोत्तर के सभी

राज्य इसमें शामिल हैं । अब असम, जम्मू–कश्मीर और हिमाचल प्रदेश को भी यह विशेष दर्जा दे दिया गया है । इन राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का 90 प्रतिशत अनुदान होता है और केवल 10 प्रतिशत ही ऋण के रूप में दिया जाता है । पहले तो उत्तराखण्ड की स्थिति उसके प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से काफी अच्छी है, फिर भी अगर सहायता की जरूरत हो तो इस संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत उत्तराखण्ड भी इस अनुदान का हकदार होगा ।

कुछ लोगों को यह कहते सुना गया है कि उत्तराखण्ड को अलग राज्य का दर्जा इसलिए नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि उसके अपने आर्थिक स्रोत ज्यादा मजबूत नहीं हैं । ये लोग शायद यह भूल जाते हैं कि पूर्वोत्तर के अधिकतर राज्यों की तुलना में उत्तराखण्ड के आर्थिक–स्रोत कहीं अधिक सुदृढ़ हैं । दूसरे, अगर आर्थिक संपन्नता के आधार पर ही राज्य दिये जाते तो देश के अनेक राज्य तो कभी भी नहीं बन पाते या फिर उनमें से कुछ को संविधान की धारा 275 के अन्तर्गत विशेष दर्जा देने की जरूरत ही नहीं होती ।

आंदोलन की वैचारिक भित्ति

उत्तराखण्ड राज्य का आंदोलन एक राष्ट्रीय आंदोलन है । एक क्षेत्र विशेष को पूर्ण राज्य का दर्जा देने की मांग अलगाव की मांग नहीं है । यह अलग राज्य समूचे राष्ट्र का एक अभिन्न अंग होगा और पूरी तरह राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ा होगा । पूर्ण राज्य की मांग इस क्षेत्र के सर्वांगीण विकास और यहां की समस्याओं के तुरंत हल के लिए की जा रही है । इस क्षेत्र के विकसित होने पर यहां के लोग तो खुशहाल होंगे ही, देश की समृद्धि में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान होगा ।

चूंकि उत्तराखंड के प्रस्तावित राज्य को राष्ट्रीय मुख्यधारा से ही जुड़कर चलना है, इसलिये जरूरी है कि उत्तराखंड राज्य को चलाने वाली पार्टियों, संस्थाओं और व्यक्तियों को क्षेत्र के साथ–साथ राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति भी सजग रहना होगा । लेकिन क्षेत्रीय पार्टियां आमतौर पर क्षेत्र की ही समस्याओं में उलझकर रह जाती हैं और उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण अक्सर स्पष्ट नहीं हो पाता ।

उत्तराखंड क्रान्ति दल राज्य प्राप्ति के लिए एक क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी है । क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी होने के कारण राष्ट्रीय स्तर की किसी पार्टी के लोग इसमें शामिल नहीं हो सकते । इससे आंदोलन में भाग लेने वालों का दायरा सीमित हो जाता है । अभी तक उक्रान्द राज्य प्राप्ति के अपने उद्देश्यों, कार्यक्रमों या कार्यदिशा में भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है । इस पार्टी ने उत्तराखण्ड क्षेत्र में सिलोगी संधि में निहित क्षेत्रों को भी शामिल करने की बात उठाई थी, जो कि अनेक दृष्टि से सही नहीं थी । यद्यपि पार्टी ने इस पर जोर देना अब बन्द कर दिया है, फिर भी अपने राजनीतिक तथा सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण को उसने अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया है ।

राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय जनता पार्टी ने 'उत्तरांचल' राज्य की मांग की है, लेकिन इस पार्टी के संकुचित और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से राज्यप्राप्ति के आंदोलन के व्यापक और धर्म–निरपेक्ष होने की उम्मीद कम है । धर्म और संस्कृति का नाम लेना अलग बात है और धार्मिक या सांस्कृतिक आचरण करना अलग बात । दूसरे, धर्म और संस्कृति किसी भी हालत में साधन नहीं हैं । उनका किसी भी हितसाधन में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए, कम से कम राजनीति में तो नहीं ही किया जाना चाहिए । भारतीय जनता पार्टी राजनीति में अपना वजूद कायम करने के लिए बहुत पहले से ही धर्म और संस्कृति को बैसाखी की तरह इस्तेमाल करती रही है । धर्म एक मानवतावादी दृष्टिकोण है, जिसे ऐसे आचरण में परिलक्षित होना चाहिए जिसमें सभी मानव एक हों । संस्कृति तभी पल्लवित होती है जब राष्ट्र या क्षेत्र विशेष की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक भित्ति मजबूत हो । पर्वतीय राज्य की मांग इसी भित्ति को मजबूत करने की मांग है । इसे पूरा करने के लिए एक स्पष्ट नजरिये की जरूरत है । हमारा विचार है कि सबसे पहले हम अपने क्षेत्र के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दें, यहां के हर आदमी को विकास के मार्ग पर अग्रसर करें और उसे इस स्थिति तक पहुंचा दें, जहां उसकी व्यक्तिगत आस्था मजबूत हो और सामूहिक संस्कृति के विकास में उसका योगदान सार्थक हो सके । जब तक उत्तराखण्ड का व्यक्ति इस स्थिति तक नहीं पहुंचता, तब तक धर्म या सांस्कृतिक प्रतीकों का नाम लेकर हम किसी खास उद्देश्य के लिए उसका शोषण तो कर सकते हैं लेकिन उसे दे कुछ नहीं सकते ।

भारतीय जनता पार्टी के 7 मार्च 1989 के राष्ट्रपति के नाम ज्ञापन में पार्टी ने उत्तरांचल की मांग जिस रूप में पेश की है वह राष्ट्रीय स्तर पर पार्टी के आम चरित्र से अलग नहीं है । पार्टी ने भारतीय एकता को शक्तिशाली बनाने के आदिशंकराचार्य के प्रयत्नों के भव्य स्मारक के रूप में भगवान बद्रीनाथ का नाम लेकर और विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी संस्कृति एवं धर्म की रक्षा करने वाले विद्वानों और पंडितों को याद कर ऐसी कोई भावभूमि प्रस्तुत नहीं की है, जिससे राष्ट्रीय एकता या सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सके । किसी क्षेत्र विशेष के लिए अलग राज्य का दर्जा प्राप्त करने के उद्देश्य में धर्म या मजहबी जजबात के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए । धर्म को राजनीति के लिये इस्तेमाल करने से कुछ लाभ नहीं होगा, उल्टे सामाजिक संतुलन और राष्ट्रीय एकता को ही इससे सबसे बड़ी ठेस पहुंचेगी । राष्ट्रीय एकता देश के सभी लोगों की एकता में निहित है, चाहे ये लोग किसी भी जाति या प्रजाति के हों, किसी भी धर्म के अनुयायी हों ।

इसलिए सामूहिक उद्देश्य के लिए चलाये जाने वाले किसी भी आंदोलन की मजबूती के लिए भी सभी लोगों को एक साथ लेकर चलना जरूरी हो जाता है ।

हम संघर्षवाहिनी की इस बात से सहमत नहीं हैं कि हमारे क्षेत्र का किसी किस्म का "औपनिवेशिक" शोषण हो रहा है । दरअसल संघर्षवाहिनी ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है कि हमें विदेशी व साम्राज्यवादी ताकतों से इतना खतरा नहीं है जितना अपनी केन्द्रीय सरकार से है । कदाचित इसीलिए अपने क्षेत्र के शोषण को वे औपनिवेशिक शोषण मानते हों । हम वाहनी के इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि अपने आंदोलन को सशक्त बनाने के लिए देश में अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान के लिए संघर्षरत शक्तियों के साथ एकता कायम की जाए । ऐसी शक्तियों में पंजाब के आतंकवादी और असम के उल्फा संगठन भी शामिल हैं, जो मूलतः पृथकतावादी हैं और देश की एकता और अखंडता में विश्वास नहीं रखते । संघर्षवाहिनी ने सरकारी आतंकवाद का तो बार-बार विरोध किया है, लेकिन सिख आतंकवाद और यहां तक कि संभावित पाकिस्तानी हमले की चर्चा को वास्तविक समस्याओं से लोगों का ध्यान हटाने की साजिश मात्र बताया है।

उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य के लिये हमारे विचार उपरोक्त विचारों से भिन्न हैं । हम यह नहीं कहते कि उत्तर प्रदेश बहुत बड़ा हो गया है, इसलिये इसके टुकड़े कर देने चाहियें । हम इस बहस में नहीं पड़ना चाहते । हमारा तो राज्य की मांग के लिये यह सैद्धान्तिक दृष्टिकोण है कि कुमाऊं–गढ़वाल की भाषा, संस्कृति, इतिहास, भौगोलिक स्थिति, रीति–रिवाज तथा अर्थव्यवस्था एक जैसी है, हमारी समस्याएं मैदानी इलाकों से भिन्न हैं, मैदानी इलाकों के दृष्टिकोण से योजनायें हमारे ऊपर थोपी जाती हैं जिससे कि हमारा विकास नहीं हो पाता । फलतः लोगों को रोजगार के अवसर नहीं मिल पाते । हमें अपनी भाषा, संस्कृति को आगे बढ़ाने का मौका नहीं मिलता । यह तभी संभव है, जब योजना बनाने और उसको लागू करने के लिये कुमाऊं–गढ़वाल के ही लोगों के हाथ में प्रशासनिक व्यवस्था हो, पूर्ण राज्य की सत्ता हो । ये बातें पूर्ण राज्य के लिये सैद्धान्तिक तौर पर आवश्यक हैं ।

अतः यदि हम केवल आर्थिक विकास के लिये राज्य की बातें करें और मैदानी क्षेत्र के बहुत बड़े हिस्से को अपने साथ जोड़ने की बात करें, जिनकी समस्यायें हमसे भिन्न हैं, तो हमारी राज्य की मांग सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से खरी नहीं उतरती ।

जो लोग आवश्यकता पड़ने पर हिंसात्मक रुख अख्तियार करने की बात करते हैं, लगता है वे सही जन–आंदोलन को समझ नहीं पा रहे हैं । एक बड़े उद्देश्य की प्राप्ति के लिये छोटे रास्ते (शार्टकट) अपनाने से कोई लाभ नहीं होगा । उल्टे नुकसान अवश्य हो सकता है । उन्हें जनता की शक्ति पर पूरा विश्वास रखना होगा, तभी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सफलता मिल सकती है । सबसे बड़ी ताकत तो जन–आंदोलन की ताकत है, जिसके सामने कोई हथियार नहीं टिक सकते । जन–आंदोलन ही मौजूदा मांग का सही उत्तर है ।

अलगाववाद और क्षेत्रवाद की भावना देश की एकता और अखण्डता के लिये घातक है । इससे जनता के बीच में फूट पैदा होती है जिसको देश के अन्दर की साम्प्रदायिक, प्रतिक्रियावादी शक्तियां व देश के बाहर देश की आजादी की दुश्मन साम्राज्यवादी शक्तियां और उनके दोस्त देश को कमजोर करने में इस्तेमाल कर सकते हैं । इसके अलावा इन भावनाओं को पनपाने से स्वयं पर्वतीय राज्य के आंदोलन की एकता कमजोर पड़ेगी । अतः इस प्रकार

की भावनायें देश के लिए और स्वयं पर्वतीय राज्य की प्राप्ति के लिये घातक हैं।

पर्वतीय राज्य आंदोलन की रूपरेखा

देश की आजादी के लिये देश की जनता ने बहुत बड़ी कुर्बानी दी, किन्तु आजादी के आंदोलन पर राष्ट्रीय पूंजीवादी शक्तियों का मुख्य शिकंजा होने के कारण आजादी के बाद के लिये देश की गरीबी दूर करने हेतु कोई समाजवादी कार्यक्रम की रूपरेखा नहीं थी । इसलिये आज आजादी के 43 वर्ष बाद भी भारत में पूंजीवादी शोषण की व्यवस्था बनी हुई है और अभी भी देश की मेहनतकश जनता को बेकारी, बेरोजगारी के खिलाफ संघर्ष करना पड़ रहा है ।

केवल पर्वतीय राज्य मिल जाने से ही कुमाऊं–गढ़वाल का इस तरह विकास नहीं हो पायेगा, जिससे वहां की आम जनता को रोजगार के साधन उपलब्ध हों और उनकी खुशहाली आगे बढ़े । ऐसा तभी संभव होगा, जब पर्वतीय राज्य की सत्ता ऐसे जन–आंदोलन के हाथ में आ जाए, जो सामंती–पूंजीवादी तत्वों से मुक्त हो । यह तभी संभव होगा, जब तराई क्षेत्र में भूमि–सीमा संबंधी कानून सख्ती से लागू करके जमीन गरीबों, खेत–मजदूरों, भूमिहीनों और फौजी भाइयों में बांटी जा सके तथा फल–पट्टी योजना के तहत आम लोगों को जमीन मिले । यदि सामंती–पूंजीवादी तत्वों के हाथ में सत्ता आयेगी, तो जनहित के लिए इस प्रकार के सुधार संभव नहीं होंगे ।

अतः पर्वतीय राज्य के आंदोलन का स्वरूप व्यापक होते हुए भी इसकी मूल भित्ति समाजवादी विचारों पर आधारित होनी चाहिए । आंदोलन को सही दिशा देने के लिये उसे शुरू से ही प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिये । राज्य मिलने पर इससे उत्तराखण्ड के चहुंमुखी विकास के लिये तेजी से सुधार–कार्यक्रम लागू करने में मदद मिलेगी ।

इस लेख में प्रस्तुत मूल विचारों के आधार पर ही जून सन् 1967 में रामनगर (जिला नैनीताल) में पर्वतीय राज्य परिषद का गठन हुआ, जिसे जनवरी 1973 में उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद् का नाम दिया गया । उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद का तजुर्बा है कि आंदोलन में धर्मनिरपेक्ष विचारों वाली

ऐसी पार्टियां या व्यक्ति शामिल हो सकते हैं, जो वहां की प्रगति के लिए राज्य के औचित्य में विश्वास करते हैं ।

अतः राज्य की मांग के लिये एक सुसंगठित आंदोलन के संचालन की आवश्यकता है, जिसका क्षेत्र पर्वतीय भू–भाग और वे प्रमुख नगर होंगे, जहां प्रवासी पर्वतीय अच्छी खासी संख्या में रहते हैं । आंदोलन जहां एकीकरण और एक मंच की दिशा में आगे बढ़ेगा, वहीं इसमें क्षेत्र के ऐसे स्वार्थी तत्वों के लिये कोई जगह नहीं होगी, जो अपने निजी स्वार्थों के लिये जातिवाद या क्षेत्रवाद की भावनाओं को पनपाकर जनता में फूट पैदा करते हैं और यहां के विकास और गरीबी को दूर करने के संघर्ष को पीछे धकेलते हैं ।

पर्वतीय जनता के इस आंदोलन में समस्त लोकतांत्रिक, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष और प्रगतिशील शक्तियों को एकजुट होकर आगे बढ़ना है, ताकि निकट भविष्य में ही जन–आंदोलन के माध्यम से हमारी राज्य के दर्जे की मांग पूरी हो सके और हमारे क्षेत्र की खुशहाली सुनिश्चित हो सके ।

इस आंदोलन की दिशा पूरी तरह स्पष्ट किये जाने की जरूरत है । आंदोलन राष्ट्रीय एकता और अखंडता को ध्यान में रखकर चलाया जायेगा । अलगाववाद के लिए इसमें किसी भी तरह की गुंजाइश नहीं होगी, क्योंकि आंदोलन अलगाववाद के खिलाफ होगा । आंदोलन पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्तों पर आधारित होगा और किसी भी तरह के साम्प्रदायिक नजरिये के लिए इसमें कोई जगह नहीं होगी । आंदोलन छोटे–छोटे क्षेत्रीय नजरियों से भी पूर्ण रुप से मुक्त होगा । पूरा उत्तराखण्ड क्षेत्र एक ही माना जायेगा और उसे अलग–अलग क्षेत्रों, जातियों या साम्प्रदायिकता की आड़ में विभाजित नहीं होने दिया जायेगा । पूरे देश के संदर्भ में भी उत्तराखण्ड की परिकल्पना में क्षेत्रवाद के तंग नजरिये के लिए कोई जगह नहीं है । साथ ही यह आंदोलन एक कार्यक्रम को लेकर भी आगे बढ़ेगा जिसकी कार्य–दिशा का संकेत पहले दिया जा चुका है ।

उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद इस आंदोलन में ऐसी सभी पार्टियों, संस्थाओं या व्यक्तियों का स्वागत करेगी, जो परिषद के उद्देश्यों और कार्य–दिशा में विश्वास रखते हों । साथ ही परिषद ऐसे संयुक्त प्रयास या मोर्चे के भी पक्ष में है जो उक्त सिद्धान्तों, मुद्दों और कार्यक्रम पर आधारित हो, ताकि आंदोलन को व्यापक एवं सशक्त रूप प्रदान किया जा सके ।

पर्वतीय राज्य आंदोलन : ऐतिहासिक परिदृश्य

1. पूर्ण राज्य की स्थापना के लिये पर्वतीय राज्य आंदोलन की पहली और ठोस शुरुआत जून 1967 में रामनगर सम्मेलन में हुई । दो दिन का यह सम्मेलन 24 और 25 जून को सम्पन्न हुआ । इसमें पहली बार उत्तराखण्ड क्षेत्र के लिए अलग राज्य की स्थापना की दिशा में आंदोलन शुरू करने के लिए पर्वतीय राज्य परिषद् की स्थापना की गई । श्री गोविन्दसिंह मेहरा इस परिषद् के अध्यक्ष चुने गये, श्री दयाकृष्ण पाण्डे उपाध्यक्ष और श्री नारायणदत्त सुन्द्रियाल महासचिव । परिषद् की कार्यकारिणी के पदाधिकारी इस प्रकार थे : सर्वश्री सुशीलकुमार निरंजन और जयवल्लभ पडलिया–संयुक्त सचिव, जयवल्लभ सुन्द्रियाल–संगठन एवं प्रचार मंत्री, जसौदसिंह रावत–कोषाध्यक्ष । सर्वश्री बी. डी. शर्मा, रतनलाल शिंगन, चिन्तामणि डौबी, उमरसिंह डंगवाल, नित्यानन्द कांडपाल, ईश्वरीदत्त ध्यानी, शान्तिप्रकाश 'प्रेम', रामप्रसाद पिलिडयाल, नन्दनसिंह जीना, भूपतिराम सुन्द्रियाल, मोहनचन्द जोशी, कल्याणसिंह रावत कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये । विभिन्न क्षेत्रों से कुछ अन्य व्यक्तियों को 'को-ऑप्ट' भी किया गया ।

25 जून को सम्मेलन के खुले अधिवेशन में आसपास के हजारों लोगों ने रैली की और पर्वतीय राज्य बनाने के लिए आंदोलन चलाने का संकल्प किया ।

इसके बाद परिषद् के तत्वावधान में प्रवास और उत्तराखण्ड में कई जगह सम्मेलन आयोजित किये गये ।

2. पर्वतीय राज्य परिषद् ने 27–28 जनवरी 1973 को नई दिल्ली में दो दिवसीय सम्मेलन बुलाया जिसमें क्षेत्रीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में परिषद् का नाम बदलकर 'उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद्' रखा गया । श्री प्रतापसिंह नेगी, सांसद और श्री नरेन्द्रसिंह बिष्ट, सांसद को परिषद् के अध्यक्षमण्डल का सदस्य चुना गया । श्री मोहन उप्रेती, उपाध्यक्ष और पुनः श्री नारायणदत्त सुन्द्रियाल महासचिव चुने गये ।

पर्वतीय राज्य की मांग को लेकर अब तक का यह सबसे बड़ा सम्मेलन था । आठों पर्वतीय जिलों के अलावा देश के विभिन्न भागों के प्रवासी प्रतिनिधियों ने भी इसमें भाग लिया । सम्मेलन के अंतिम दिन एक विशाल रैली की गई, जिसमें पर्वतीय राज्य की मांग के लिए 'दिल्ली चलो' का नारा दिया गया ।

मार्च 1988 में उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद् का पुनर्गठन किया गया।

3. सन् 1973 में नैनीताल में उत्तरांचल राज्य परिषद् का गठन किया गया । श्री इन्द्रमणि बडूणी इस संगठन के कर्ता-धर्ताओं में से एक थे । लेकिन यह संगठन बहुत अधिक समय तक नहीं चल पाया । इससे पहले टिहरी के भूतपूर्व महाराजा मानवेन्द्रशाह ने भी पर्वतीय राज्य की मांग के समर्थन में विचार - गोष्ठियों आदि का आयोजन किया । जून 1966 में रामनगर में दो दिन के राजनीतिक सम्मेलन में कांग्रेस के नेताओं ने भी पहाड़ों के पिछड़ेपन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए क्षेत्र के विकास के बारे में कुछ प्रस्ताव पारित किये ।

4. सन् 1979 में उत्तराखण्ड राज्य परिषद् का गठन हुआ । टेहरी से सांसद श्री त्रेपनसिंह नेगी इसके अध्यक्ष थे । परिषद् ने 28 जुलाई 1979 को नई दिल्ली में बोट क्लब पर प्रदर्शन किया । यह संगठन भी किन्हीं कारणों से जल्दी ही लुप्त हो गया ।

5. 25 जुलाई 1979 को उत्तराखण्ड क्रान्ति दल का गठन हुआ । कुमाऊं विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त कुलपति श्री डी. डी. पंत इसके पहले अध्यक्ष बने । विधायक काशीसिंह ऐरी इस दल के मौजूदा अध्यक्ष हैं । उक्रांद ने 10 नवम्बर 1986 को नैनीताल और 7 मार्च 1987 को पौड़ी में प्रदर्शन किये ।

23 नवम्बर 1987 को नई दिल्ली में भी बोट क्लब पर एक रैली का आयोजन किया ।

6. राष्ट्रीय पार्टियों में सबसे पहले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पर्वतीय राज्य की मांग का समर्थन किया । वैसे व्यक्तिगत स्तर पर पार्टी के सदस्य पहले से ही इस आंदोलन में शरीक थे, लेकिन सितम्बर 1979 से पार्टी स्तर से भी इस आंदोलन को समर्थन मिलने लगा ।

7. 20 सितम्बर से 10 अक्तूबर 1985 तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों और ए. आई. एस. एफ. तथा ए. आई. वाई. एफ. के जवानों ने गढ़वाल मंडल में सैकड़ों मील तक साईकिल यात्रा की और पर्वतीय राज्य की मांग को और आगे बढ़ाया ।

8. 3-4 मई 1987 को ऋषिकेश में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के

उत्तराखण्ड क्षेत्र के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें उत्तराखण्ड राज्य के आंदोलन को बल देने के लिए पार्टी की पर्वतीय राज्य कमेटी का गठन किया गया । पहले इसके संयोजक श्री कमलाराम नौटियाल थे । आजकल यह जिम्मेदारी श्री अमरसिंह नेगी को सौंपी गई है । इस कमेटी ने उत्तराखण्ड में जिला मुख्यालयों के सामने प्रदर्शन आयोजित किये । पार्टी की ओर से 17 अप्रैल 1989 को पौड़ी में एक विशाल रैली आयोजित की गई । 9 दिसम्बर 1990 को उत्तरकाशी में भी एक रैली का आयोजन किया गया ।

9. उत्तराखण्ड राज्य को समर्थन देने वाली राष्ट्रीय स्तर पर दूसरी राजनीतिक पार्टी भारतीय जनता पार्टी है । इस पार्टी ने भी 12 अप्रैल 1990 को नई दिल्ली में बोट क्लब पर एक रैली का आयोजन किया ।

10. उत्तराखण्ड संघर्ष वाहिनी ने 1988 में 19 से 21 जून तक अलमोड़ा में आयोजित 3 दिन के सम्मेलन में उत्तराखण्ड राज्य को समर्थन देने का ऐलान किया । वाहिनी के अध्यक्ष डा0 शमशेर सिंह बिष्ट हैं ।

इस तरह पर्वतीय राज्य की मांग को लेकर समय-समय पर कुछ संगठन, संस्थाएं और राजनीतिक पार्टियां सामने आती रही हैं । धीरे-धीरे पर्वतीय राज्य आंदोलन से जुड़ी गतिविधियां भी बढ़ रही हैं । अलग राज्य की जरूरत के बारे में भी अब ज्यादा लोग सचेत हैं । इसलिए, अब समय आ गया है जब पर्वतीय राज्य आंदोलन को सही दिशा और उपयुक्त मंच मिलना चाहिए ।

उत्तराखण्ड : एक नजर में

क्षेत्रीय इकाइयां : गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, अलमोड़ा, नैनीताल, देहरादून, उत्तरकाशी, चमोली, पिथौरागढ़ और हरिद्वार ।

स्थिति : पूर्व में नेपाल, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश और उत्तर में तिब्बत (चीन) । भारत के समूचे हिमालयी क्षेत्र में केवल इसी क्षेत्र को स्वायत्तता (पूर्ण राज्य के दर्जे) से वंचित रखा गया है ।

क्षेत्रफल : हरिद्वार को छोड़कर 51,122 वर्ग किलोमीटर ।

जनसंख्या : सन् 1981 की जनगणना के आधार पर 48,35,(912) इसमें हरिद्वार की जनसंख्या शामिल नहीं । हिमालय क्षेत्र में जम्मू-कश्मीर के बाद दूसरे नम्बर पर ।

आर्थिक स्थिति : 70 % लोग गरीबी-रेखा के नीचे । देश की यह प्रतिशत 46 , उत्तर प्रदेश की 50.1 और हिमाचल प्रदेश की 27.1 ।

भाषा : कुमाऊंनी, गढ़वाली व सम्मिलित रूप से मध्य पहाड़ी ।

वन संपदा : क्षेत्र के दो तिहाई यानी 65 प्रतिशत भाग में वन । मुख्य रूप से साल, शीशम, चीड़, बांज, देवदार और कत्थे के पेड़ । वनों की नियोजित व्यवस्था और उचित उपयोग से करोड़ों रूपये के राजस्व की संभावना ।

नदी-जल क्षमता : क्षेत्र की प्रमुख नदियों में गंगा (अलकनंदा, भगीरथी), यमुना, टौंस, नयार, रामगंगा, कोसी, काली नदी । संपूर्ण पन-बिजली क्षमता के उपयोग से अधिकतम राजस्व प्राप्त होने का अनुमान ।

पर्यटन : तीर्थ यात्राओं के अलावा अन्य घरेलू और विदेशी पर्यटन के विकास की विपुल संभावनाएं । स्कीइंग, ट्रैकिंग, राष्ट्रीय उद्यानों, फूलों की घाटियों, बुग्यालों के विकास और नए पर्यटन-स्थलों के विकास की भरपूर गुंजाइश ।

नारायणदत्त सुन्द्रियाल द्वारा उत्तराखण्ड पर्वतीय राज्य परिषद् 4 विंडसर प्लेस, नई दिल्ली-110 001 के लिए प्रकाशित और जनविकास प्रेस नई दिल्ली-3 में मुद्रित । लेसर टाईपसेटिंग प्रिन्टो क्राफ्ट द्वारा की गई । फोन- 616092 मूल्य : 3 रुपये ।

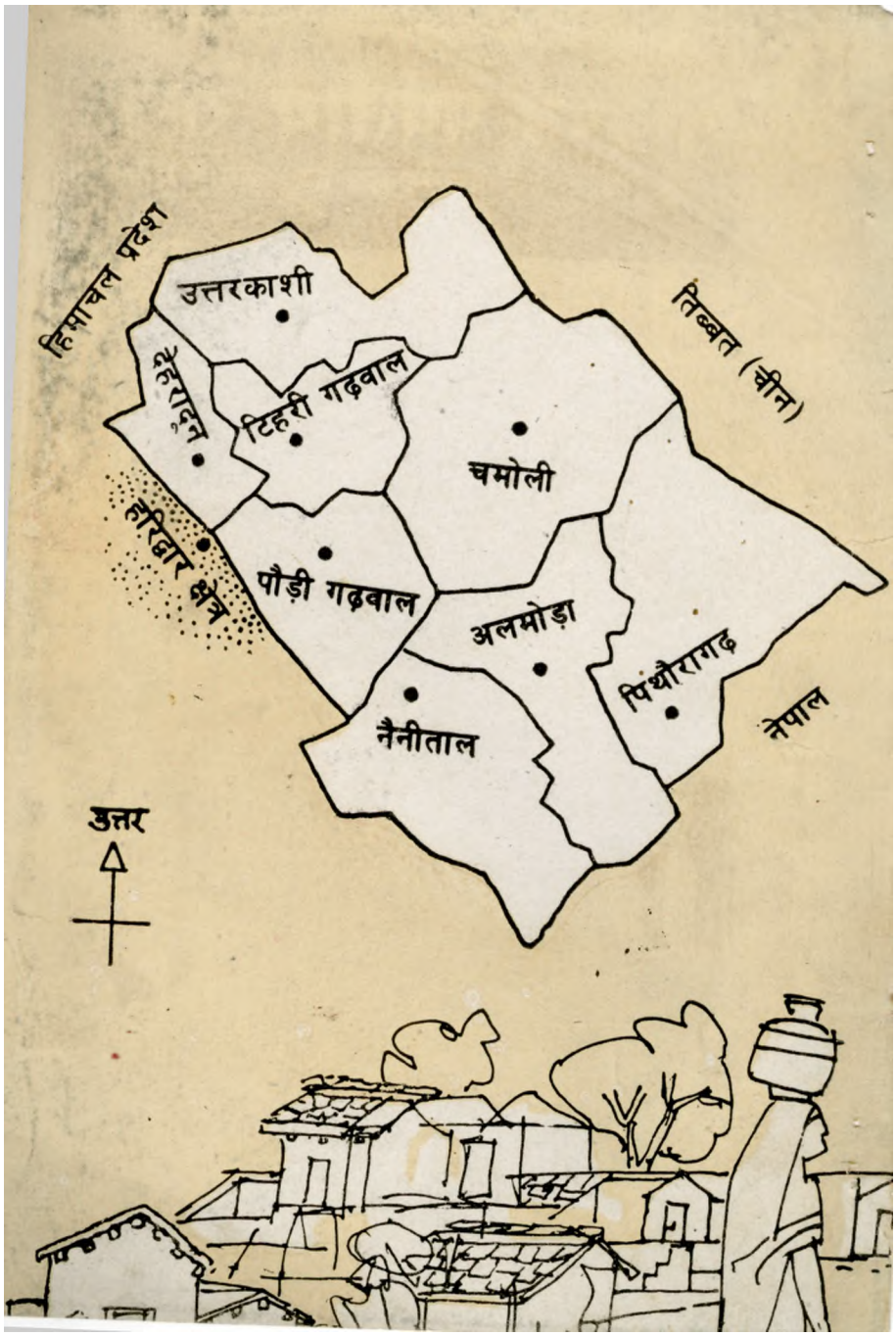
हिमाचल प्रदेश
उत्तरकाशी
तिब्बत (चीन)
देहरादून
टिहरी गढ़वाल
चमोली
हरिद्वार क्षेत्र
पौड़ी गढ़वाल
अलमोड़ा
पिथौरागढ़
नैनीताल
नेपाल
उत्तर